भाषा, भाषा का प्रयोजन तथा प्रयोजनमूलक भाषा

डॉ0 विनोद कुमार' *

भाषा का संप्रत्यय–भाषा सृष्टि की सर्वव्यापकता और अलौकिक प्रकाश का प्रतिमान है। प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक क्षण, प्रत्येक परिवर्तन स्वयं में अभिव्यक्ति है और यह अभिव्यक्ति भाषा का स्वरूप है। यह सृष्टि के आरंभ से है और जीवन के प्रत्येक क्षण के साथ गतिमान रहा है। अपने सर्वव्यापी स्वरूप में परिवर्तनों की साक्षी रही भाषा के स्वरूप में भी परिर्वतन हुआ। मूक, सांकेतिक तथा विशिष्ट ध्वन्यात्मकता के परिवेश से आधुनिकता के कलेवर तक इसने सदैव अपना गुणधर्म अक्षुण्ण रखा, और वह गुण धर्म है अभिव्यक्ति का, संचार का और विचारोद्घाटन का। वास्तव में भाशा भावों की अभिव्यंजना का माध्यम है और इसका स्वरूप अत्यंत व्यापक है। पशु–पक्षियों की ध्वनि हो, किसी प्रकार का इंगित हो, संकेत हो या मानवों की ध्वन्यात्मक भाषा हो अथवा सड़कों के किनारे लगाए गए परिवहन संबंधित विभिन्न रंगों की पट्टियाँ हों, ये सभी भाषा ही हैं।

भाषा के अर्थ को हम इस रूप में समझ सकते हैं कि भाषा एक ऐसा साधन है जो विचारों, भावों अथवा किसी भी प्रकार के संदेषों के संप्रेषण में काम आता है। यह सदैव अर्थबोध का वाहक होता है। भाषा के उपर्युक्त विविध रूपों में अपनी सटीक और पूर्णतायुक्त अर्थबोध या भाव संप्रेशण की योग्यता के कारण ध्वनि–संकेत आधारित भाषा ही सर्वोत्कृष्ट है। आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा के मतानुसार ''भाषा का मुख्य प्रयोग धवनि–संकेतों की सहायता से भावों या विचारों की अभिव्यंजना के लिए ही होना चाहिए। अभिव्यंजना के उपर्युक्त साधनों में अपूर्णता और अस्पष्टता रहती है। ध्वनि–संकेतों की भाषा ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो वक्तव्य को पूर्णता और स्पष्टता से सम्प्रेषित कर सकती है।''

ध्वनि की विविधतापूर्ण उच्चारण क्षमता तथा व्यापक अर्थापन्नता के कारण मनुष्यों की भाषा सर्वोत्कृष्ट भाषा है। यह मनुष्य के पास एक ऐसा साधन है जिसने उसकी संप्रेषाण क्षमता समुन्नत की जिससे व्यक्ति न केवल विचारों का आदान–प्रदान करता है, वरन् अपने सामाजिक क्रियाकलाप भी निष्पन्न करता है। भाषा की निश्पत्ति समाज में होती है तथा पीढ़ीगत संचरण भी समाज में ही होता है। यही कारण है कि किसी विशेश 'भाषी' समाज के सदस्य, उस भाषा को सहज

*छावनी मोहल्ला, वार्ड नं. 9, भभुआ (कैमूर) बिहार

बहुरूपता पाई जाती है। यह बहुरूपता ही भाषा में विभिन्न प्रकार का 'विकल्पन' है। भाषा में प्राप्त होने वाले क्षेत्रीय, सामाजिक एवं प्रयोजनमूलक रूप, भाषा–विकल्पनों के ही उदाहरण हैं, जो विविध प्रयोक्ताओं द्वारा विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, विविध संदर्भों में, भाषिक प्रयोग के फलस्वरूप विकसित होते हैं।

भाषा की संरचना अपनी प्रकृति में बहुत ही जटिल और बहुस्तरीय है तथा उसके प्रयोजन भी बहुमुखी हैं। भाषा एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से मानव, अंतःवैयक्तिक विचारों की श्रृंखला से होता हुआ अंतरवैयक्तिक संचार की आवष्यकता पूरी करता है। यह अभिव्यक्ति वैयक्तिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सोद्देश्य होती है। यह मनुष्य की पूरी चितंन प्रक्रिया का आधार है। इस प्रकार भाषा अपनी इकाइयों से सुसम्बद्ध होकर हमारे समक्ष एक जटिल संरचना के रूप में उपस्थित होती है जो कि उसका प्रयुक्तिपरक स्वरूप होता है।

भाषा की अवधारणा एवं आवश्यकता –प्रत्येक जीव भावों का संप्रेषण करता है। सामान्यतः यह संप्रेषण ध्वन्यात्मक और अर्थपूर्ण होते हैं। विचारों और भावों का यह अर्थपूर्ण ध्वनि संप्रेषण ही भाषा है। भाषा की यही अवधारणा सामान्य है। किंतु किसी भी प्रकार की या पशु–पक्षियों की ध्वनियों को भाषा के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है भले ही वो अर्थपूर्ण होती हों। आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा के शब्दों में ''भाषाविज्ञान का संबंध पशुओं की बोली या चिह्न–भाषा से नहीं है।''

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अपने भाषायी–समाज के अन्य सदस्यों के साथ विचारों का आदान–प्रदान करे, यह उसकी सामाजिक आवश्यकता है। विचारों का यह आदान–प्रदान ही वस्तुतः भाषा का 'प्रयोजन' है। यह अपने स्वरूप में 'ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था' है। प्रतीक की संकल्पना त्रिवर्गीय संकेतन संबंधों–संकेतित वस्तु, संकेतार्थ तथा संकेत प्रतीक पर अवस्थित है। 'संकेतित वस्तु' का संबंध भौतिक जगत के साथ होता है यथा नदी, पर्वत, विवाह, गुलाब गाय आदि। संकेतित वस्तुओं के प्रसंग में प्रयोक्ता के मन में इन वस्तुओं की, रंग, रूप, आकार, प्रकार आदि विविध गुणों से संबंधित जो संकल्पनाएँ होती हैं, वही इन संकेतित वस्तुओं के 'संकेतार्थ' होते हैं। और संकेतित वस्तुओं के संकेतार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली इकाई 'संकेतित प्रतीक' कहलाती है। ये प्रतीक ही संकेतित वस्तु की पहचान धारण करते हैं, अर्थात् ये प्रतीक ही संकेतित वस्तु का अर्थ अभिधान होते हैं।

भाषा का प्रयोजन तथा प्रयोजनमूलक भाषा–भाषा व्यापार मनुष्य की आवश्यकता है। यह आवश्यकता प्रथमतः उसकी व्यक्तिगत आवश्यकता है, तत्पश्चात् सामाजिक आवश्यकता, अन्ततः जीवन की अन्य व्यावहारिक आवश्यकता है। यह

आवश्यकता ही भाषा का प्रयोजन है और इन प्रयोजनों की सिद्धि ही उसके विकास की पृश्ठभूमि भी है। यह तो सहज ही कल्पनीय है कि सभ्यता के आरंभ में जब मानव का स्वरूप आदिमानव का था तो वह भी वन्यजीवन पर आधारित जीवनयापन करता था। अन्य वन्यजीवों के समान प्रकृतिप्रदत्त शाकाहार और माँसाहार पर जीवनयापन वाले युग का मानव भाषिक रूप से समृद्ध नहीं था, तथा ध्वनियों की विशिष्ट सांकेतिक विधियों द्वारा सीमित अर्थ प्रयोजन वाले संप्रेषण करता रहा होगा। यह संप्रेषण उनको प्रकृति प्रदत्त संवेगों के अनुरूप विविध भावों को प्रकट करने की आवश्यकता पूर्ण करने का अवसर प्रदान करता रहा होगा। किन्तु समयान्तराल में सूचनाओं, ज्ञान और आवश्यकताओं के विस्तार के साथ अपने उर्वर मस्तिष्क तथा प्रयासों से उन्होंने ध्वनियों की समृद्ध संकेत परम्परा का विकास किया होगा। इस भाशिक समृद्धि ने, उनके सांवेगिक भावों की गहराई और तीव्रता के अनुरूप, उन्हें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान की, और यही भाषिक योग्यता जब लेखन तक समृद्ध हुई तो हमें अपने प्रामाणिक इतिहास का ज्ञान प्राप्त हुआ। भाषा के ये ही सभी विविध प्रयोग या आवश्यकताएँ भाषा के प्रयोजन का स्वरूप हैं।

भाषा की यह प्रयोजनीयता विविध रूपों में प्रकट होती है। विद्वज्जन विभिन्न आधारों पर इसके विविध प्रयोजनों को संकेतित करते हैं। 'प्रो0 दिनेश प्रसाद सिंह' भाषा अध्ययन की सुविधा के लिहाज से इसके "दो संदर्भ बताते हैं।"पहला **'प्रयोजनपरक सन्दर्भ'** और दूसरा **'संरचनापरक सन्दर्भ'**। एक भाषा की सम्प्रेशणीयता तथा संचार संबंधी कार्यों से संबंधित है, तो दूसरा भाषा के रूपिम, स्वनिम तथा विविध भाषावैज्ञानिक आधारों पर उसकी रचना विधान की जानकारी के विश्लेशण से संबंधित हैं। आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा भाषा के उपयोग के तीन आयाम निर्धारित करते हैं–

1. व्यक्ति – स्वयं
2. व्यक्ति – व्यक्ति
3. व्यक्ति – समाज

इन विभेदों के आधार पर वे भाषा के वैयक्तिक पक्ष, अन्तरवैयक्तिक पक्ष तथा सामाजिक पक्ष की भाषा प्रयोग की विविधताओं को स्पष्ट करते हैं। इसमें प्रथम विभेद व्यक्ति के अंदर चलने वाली भाषिक प्रक्रिया है। इसमें व्यक्ति जीवनानुभवों तथा संवेगों की अभिव्यक्ति को आकार देने का प्रयास करता है। इसके तहत व्यक्ति पंच ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त ज्ञान के संबंध में एक संप्रत्यय का विकास करता है जिसमें प्राप्त ज्ञान से संबंधित वस्तु के आकार–प्रकार, रंग–रूप तथा उससे जुड़ी अन्य विशेषताओं की पहचान करता है तथा चिंतन–मनन की प्रक्रिया से अपने ज्ञान

को दृढ़ करता जिसमें व्यक्ति की सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक, शैक्षिक एवं उसकी मेधा आदि विशिष्टताओं का समाहार होता है। उदाहरण के लिए –

किसी स्वादिष्ट व्यंजन के संबंध में अपनी राय प्रकट करते हुए एक ग्रामीण व्यक्ति अपनी क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग करेगा। वहीं एक नगरीय व्यक्ति वहां बोली जाने वाली मानक भाषा का प्रयोग करेगा। भाषा रहित एक मूक–बधिर व्यक्ति अपनी भाव–भंगिमाओं से केवल उसके स्वाद और अपने आनंद–संवेग की अभिव्यक्ति मात्र कर पाएगा। सामान्य व्यक्ति सीधे–सपाट लहजे में उसके आकार–प्रकार और अन्य विशेषताओं के संबंध में अपनी राय रखेगा जबकि काव्यात्म अभिरूचि संपन्न व्यक्ति उसके संबंध में बताते हुए विशिष्ट विशेषणों का उपयोग अथवा विशिष्ट भाषा–शैली का प्रयोग कर सकता है।

दूसरा आयाम 'व्यक्ति–व्यक्ति' से है, और यही भाषा के अन्तरवैयक्तिक संचार का प्रयोजन है। यह भाषा का द्वितीय प्रयोजन है। भाषा का यह दूसरा रूप, 'व्यक्ति–व्यक्ति' के मध्य का भाषिक आदान–प्रदान, सामाजिक संचार का प्रारंभिक रूप है। किसी से अपनी सांवेगिक भावनाओं की अभिव्यक्ति या फिर सामान्य वार्तालाप, अथवा किसी प्रकार का दिया जाने वाला निर्देश आदि, समस्त, भाषा अभिव्यक्ति के संचारगत तथा संप्रेषणात्मक स्वरूप हैं।

भाषा का तीसरा प्रयोग सामाजिक प्रयोग है, और इस प्रयोग की भूमि अत्यंत व्यापक तथा विस्तृत है। संचार का व्यापक रूप और जनसंचार की संप्रेषणात्मक पृष्ठभूमि को यही भाषिक आयाम आधारभूमि प्रदान करता है। भाषा का यह प्रयोग सामाजिक संघटन और समन्वय का कार्य करता है। आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा सामाजिक दृष्टिकोण से भाषा के चार प्रयोग निर्धारित करते हैं–

1. सूचन
2. प्रेरण
3. रसन
4. चिन्तन

भाषा का प्रयुक्त सामाजिक संचार अधिकतम सूचनात्मक ही होता है। पंच ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त सम्पूर्ण अनुभव किसी न किसी रूप में प्रथमतः सूचनात्मक ही होता है। विविध विषयों का ज्ञान हो अथवा विभिन्न माध्यमों द्वारा किसी विषयवस्तु के सम्बन्ध में किसी जानकारी का जन–संप्रेषण हो, वह सूचनात्मक ही होता है। उदाहरण के रूप में किसी समाचार पत्र या चैनल के माध्यम से विविध विषयों से सम्बन्धित जितनी भी जानकारियाँ प्रसारित की जाती हैं वे सभी भाषा के सूचनात्मक प्रयोजन को सिद्ध करती हैं।

आचार्य शर्मा के अनुसार, प्रेरण भाषा का गत्यात्मक उपयोग है। यह किसी विशेष प्रयोजन के प्रति लोगों में जनमत निर्माण या उनके मन में एक विशेष

अवधारणा विकसित करने का प्रयास है। यह अवधारणा किसी विशेष के प्रति, पक्ष या विपक्ष के रूप में सामुहिक समर्थन का प्रयास होता है। किसी भी प्रकार का जनमत या चुनाव प्रचार, विज्ञापन अथवा भाषण, ये सभी इसी कोटि में आते हैं। उदाहरण के लिए –

'सबसे योग्य, कर्मठ और सशक्त उम्मीदवार..... अपना कीमती वोट इन्हें ही दें'

इस उक्ति में किसी विशेष के प्रति जनता को प्रेरित करने का प्रयास किया जाता है। इसी प्रकार विज्ञापनों की भाशा में भी प्रेरित करने का भाव समाहित होता है भले वह विद्रूप और अवांछनीय भाव से भरा हो। उदाहरण के लिए –

'मर्द होकर औरतों की क्रीम लगाते हो! फेयर एण्ड हैंडसम, मर्दों का क्रीम।

भाषा के सामाजिक प्रयोग का तीसरा रूप उसके साहित्यिक प्रयोग से संदर्भित है। काव्यात्मकता से भरा यह प्रयोजनात्मक पक्ष भाषा की रमणीयार्थकता से जुड़ा हुआ है। विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से नौ रसों की निष्पत्ति का तात्पर्य, भाषा के रसन अथवा उसका आस्वादनात्मक प्रयोजन ही है। भाषा का यह रूप रचनात्मकता तथा सौन्दर्यबोध से सम्पृक्त है।

भाषा का अन्तिम प्रयोजन चिन्तन है जिसे आचार्य शर्मा अन्यतम मानते हैं। सूक्ष्म अवलोकन किया जाय तो भाषा का यह स्वरूप वास्तव में वैयक्तिक है। इसमें संचार या संप्रेषण का अवकाश नहीं। चिन्तन तो विशुद्ध मानसिक प्रक्रिया है। अतः व्यक्ति का स्वयं से भाषिक प्रयोग है। किन्तु यही चिन्तन जब सिद्धान्त अथवा दर्शन के रूप में विभिन्न माध्यमों से लोगों के समक्ष उपस्थित होता है, जिसमें व्यक्ति सीधे संचार या संप्रेषण नहीं कर रहा होता है किन्तु, समाज से संबंधित उसका चिन्तन सामाजिक संदर्भों में प्रस्तुत होता है, तो भाषा का यह प्रयोजन सामाजिक प्रयोग के रूप में सिद्ध होता है।

कुछ अन्य भाषावैज्ञानिकों ने भाषा के प्रयोजन का संदर्भ समाज के साथ जुड़ा हुआ माना तथा स्वीकार किया कि प्रयोग के धरातल पर भाषा मनुष्य की अनेक आवष्यकताओं को पूरा करती है। इन आवष्यकताओं के आधार पर भाषा–वैज्ञानिकों ने भाषा–प्रयोग के निम्नलिखित तीन संदर्भ उल्लिखित किये :

क. अभिव्यक्ति संदर्भ ख. संप्रेषण संदर्भ ग. सूचक संदर्भ।

क. अभिव्यक्ति संदर्भः भाषा मनुष्य के पास एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से वह अपने जीवन एवं जगत के अनुभवों तथा विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। यह भाषा ही है जो हमारे विचारों और अनुभवों को संरचना में बाँध कर अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

ख. संप्रेषण संदर्भः भाषा मनुष्य के पास वह साधन है जिसके माध्यम से समाज के लोग परस्पर अपने विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। अपने मन की बात दूसरे तक पहुँचाते हैं। अतः भाषा संप्रेषण व्यवस्था का एक सीमित साधन है।

ग. सूचक संदर्भः भाषा हमें सूचना देती है कि प्रयोक्ता का सामाजिक पद क्या है, वक्ता–श्रोता के पारस्परिक संबंध किस प्रकार के हैं। भाषा में जो औपचारिक तथा अनौपचारिक प्रयोग, शैली भेद आदि दिखाई पड़ते हैं वे सब भी इसी तरह की सूचना देते हैं।

उपर्युक्त रूपों में हम भाषा की प्रयोजनमूलकता को समझ पाते हैं। भाषा की उत्पत्ति तथा इसके निरंतर विकास के पीछे का मूल कारण इसकी विविध प्रयोजनमूलकता ही है। यह प्रयोजनमूलकता भाषा के विविध प्रकार्य हैं, भाषा की उपयोगिता हैं। उपर्युक्त विवरण से भाषा का जो प्रयोजन स्पष्ट होता है वह है –

1. अनुभव अथवा स्वानुभूति का प्रतीकीकरण
2. चिन्तन–मनन तथा अंतःवैयक्तिक संचार
3. संप्रेषण एवं वैचारिक आदान–प्रदान
4. ज्ञान तथा सूचनाओं का संचय, संप्रेषण संवहन तथा संरक्षण
5. जनसंचार
6. सृजन
7. विविध सामाजिक प्रकार्य

भाषा की प्रयोजनमूलकता तथा प्रयोजनमूलक भाषा के मध्य यही अंतर है। भाषा की प्रयोजनमूलकता का तात्पर्य ही है भाषा के विविध प्रयोग। यह अपने अंदर भाषिक प्रयोग की विस्तृत भावभूमि समेटे होता है। इसके अंतर्गत कोई विशिष्ट भाषिक रूप नहीं होता बल्कि यह भाषा मात्र के प्रयोजनों को संकेतित करता है। इससे आगे बढ़कर जब किसी भाषा के विविध भाषिक स्वरूपों तथा आवश्यकता आधारित उसकी विविध विकसित होती प्रयुक्तियों की बात की जाती है तो वह भाषा का प्रयोजनमूलक स्वरूप होता है। स्थूल रूप में तो वह भाषा की प्रयोजनमूलकता में समाहित होता है किंतु सूक्ष्म अवलोकन पर वह विविध भाषाओं के विविध प्रयोगों के अनुरूप विशिष्ट स्वरूप में भाषा का प्रयोजनमूलक स्वरूप कहलाता है। उदाहरण के तौर पर –

हिन्दी भाषा का आरम्भिक प्रयोजनमूलक रूप मुख्यतः साहित्यिक था। राज–काज की भाषा कभी फारसी तो कभी अंग्रेजी रही। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्, विविध प्रयोजनों हेतु इसका प्रयोग आरम्भ हुआ। राजकार्य, तकनीकी, व्यावसायिक और जनसंचार प्रयोजनों के अनुरूप पारिभाषिक शब्दावली एवं शब्दकोश का निर्माण हुआ तथा उसके अनुरूप हिन्दी का विशिष्ट प्रयोग आरम्भ

हुआ। और इसी से हिन्दी के प्रयोजन मूलक स्वरूप की भी उत्पत्ति हुई। नवीन ज्ञान तथा निरंतर उन्नत होते तकनीक और विज्ञान के इस दौर में भाशा के व्यवहारपरक प्रयोजनों का विस्तार हुआ है। इसी के सापेक्ष, वर्तमान सामाजिक आवश्यकताओं के सन्दर्भों में हिन्दी भाषा के सामाजिक प्रयोगों का दायरा भी विस्तृत हुआ है। इन विविधतापूर्ण आवश्यकताओं के अनुरूप हिन्दी भाषा के प्रयोग की शैली तथा उसकी प्रयुक्तियाँ हिन्दी की प्रयोजनमूलक भाषा है।

निष्कर्ष—भाषा, ज्ञान के संग्रह, संरक्षण तथा संप्रेषण की षक्ति है। भाशा को मूलतः संप्रेषण के साधन के रूप में भी परिभाषित किया जाता है। ऐसा नहीं कह सकते कि संप्रेषणीयता का यह तत्व केवल ध्वनियुक्त भाशा में ही है। यह गुण अन्य संकेत प्रणालियों मे भी है। भाषा (ध्वन्यात्मक) स्वयं भी एक ध्वन्यात्मक संकेत प्रणाली ही है। किन्तु संप्रेषण की वह षक्ति जो भाषा धारण करती है, अन्य किसी में नहीं है। भाषा, समुदाय द्वारा ही विकसित होते हुए भी किसी समुदाय का सामाजिक और सांस्कृतिक आधार होती है।यह सामुदायिक–सामाजिक लक्षणों को धारण कर पीढ़ी दर पीढ़ी उसका संवहन और पोषण करती है। इसके लिए भाषा को समयानुकुल परिवर्तनों तथा तथा विविध सामाजिक क्रियाकलापों के अनुरूप संप्रषणात्मक दायित्वों को संपन्न करना होता है। यही भाषा का प्रयोजन है।

भाषा का यह प्रयोजन ही उसके विविध स्वरूपों का निर्धारक होता है। यह प्रयोक्ता सापेक्ष तथा प्रयोजन सापेक्ष विशिष्ट प्रयुक्तियों में अभिव्यक्त होता है। घर का अनौपचारिक संवाद, समाज के मध्य औपचारिक संवाद, व्यवसायिक भाषा, विज्ञान एवं तकनीक की भाषा, विधि की भाषा, साहित्य की भाषा आदि विविध स्तरों पर भाशा शैली से लेकर अर्थ स्तर तक कई विभेद उपस्थित हो जाते हैं। प्रयोजन सापेक्ष यह भाषाई विचलन या विकल्पन ही प्रयोजनमूलक भाषा है। भाषा का प्रयोजन तथा प्रयोजनमूलक भाषा का यही सूक्ष्म विभेद है।

संदर्भ सूची

1 शर्मा, आचार्य देवेन्द्रनाथ एवं दीप्ति शर्मा : भाषाविज्ञान की भूमिका, राधा.श्ण प्रकाशन,

2 सिंह, डा0 दिनेश प्रसाद : प्रयोजनमूलक हिन्दी और प्रत्रकारिता, वाणी प्रकाशन,

3 झाल्टे, दंगल : प्रयोजनमूलक हिन्दीः सिद्धान्त और प्रयोग वाणी प्रकाशन,

4 ललितांबां, प्रो. बी. वै. : भाशा द्वैमासिक पत्रिका, केंद्रीय हिन्दी निदेषालया, मा0 सं0 वि0 मंत्रालय

5 सिंह, महिपाल एंव मिश्र देवेन्द्र : विष्व बाजार में हिन्दी, वाणी प्रकाषन

6 सिंह, प्रो0 दिलीप : भाषा का संसार(आधुनिक भाषा विज्ञान की सुगम भूमिका), वाणी प्रकाशन,

7 चौहान, जसपाली : प्रयोजनमूलक हिंदीः वैज्ञानिक और तकनीकी भाषा रूप, गवेषणा पत्रिका;

8 रत्तू, डॉ0 कृश्ण कुमार : दूरदर्षनः हिन्दी के प्रयोजनमूलक विविध प्रयोग; इना श्री पब्लिषर्स जयपुर

9 सिंह प्रो0 दिलीप; अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान (आलेख) 'भाशा' द्वैमासिक पत्रिका, केंद्रीय हिन्दी निदेषालय, मा0 l a fo0 eaky ; ISSN0523&1418 वर्श 41 अंक 2

10 डा0 नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, नौएडा,